* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो,श्रम व्यर्थ सभी,केवल बंधनकर॥

वर्ष ८ | गौराब्द ४७६, मास—केशव ५, वार—गर्भोदशायी
शुक्रवार, ३० कार्त्तिक, सम्वत् २०१९, १६ नवम्बर १९६२ | संख्या ६

श्रीकृष्णस्तोत्रम्

नमो विश्व स्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१॥
नमो विज्ञान-रूपाय परमानन्द-रूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥२॥
नमः कमलनेत्राय नमः कमल-मालिने ।
नमः कमल-नाभाय कमला-पतये नमः ॥३॥
बर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
रमा-मानस-हंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४॥
कंसवंश विनाशाय केशि-चानूर-घातिने ।
वृषभध्वज-वन्द्याय पार्थ-सारथये नमः ॥५॥
वेणुवादन-शीलाय गोपालायाहि मर्द्दिने ।
कालिन्दी-कुल लोलाय लोल-कुण्डल-धारिणे ॥६॥

वल्लवी-नयनाम्भोज-मालिने नृत्यशालिने ।
नमः प्रणत-पालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥७॥
नमः पाप-प्रणाशाय गोवर्द्धन-धराय च ।
पूतना-जीवितान्ताय तृणावर्त्तासु-हारिणे ॥८॥
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धि-वैरिणे ।
अद्वितीयायमहते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥९॥
प्रसीद परमानन्द ! प्रसीद परमेश्वर ! ।
आधि-व्याधि-भुजंगेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ! ॥१०॥
श्रीकृष्ण ! रुक्मिणीकान्त ! गोपीजन-मनोहर ! ।
संसार-सागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ! ॥११॥
केशव ! क्लेशहरण ! नारायण ! जनार्द्दन ! ।
गोविन्द ! परमानन्द ! मां समुद्धर माधव ! ॥१२॥

—श्रीगोपालतापनीय-श्रुतिधृत म्

अनुवाद—

जो विश्वस्वरूप हैं और जो विश्वकी सृष्टि, एवं पालनके कारण हैं, उन विश्वमय श्रीगोविन्दको बारम्बार नमस्कार है ॥१॥

जो विज्ञान-स्वरूप और परमानन्दमय विग्रह हैं, उन गोविन्द गोपीनाथ श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम है ॥२॥

जो नेत्रोंमें कमलकी शोभा धारण करते हैं, कंठ में कमल पुष्पोंकी माला धारण करते हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन लक्ष्मीस्वरूपा—सर्वलक्ष्मीमयी श्रीराधिकाके प्राणेश्वर श्यामसुन्दरको नमस्कार हैं ॥३॥

जिनके मस्तक पर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है, जो असीम ज्ञानमय हैं तथा लक्ष्मीदेवीके (श्रीराधिकाके) मानस-सरोवरमें विहार करनेवाले राजहंस हैं, उन श्रीगोविन्दको बारम्बार प्रणाम है ॥४॥

जो कंसके वंशका विध्वंस करनेवाले तथा केशी और चाणूरके विनाशक हैं और जो श्रीमहादेवके भी वन्दनीय हैं, उन पार्थ-सारथि श्रीकृष्णको नमस्कार है ॥५॥

जो बाँसुरी बजाते हैं, जो गौओंके पालन तथा कालियनागका मान-मर्दन करने वाले हैं, कालिन्दीके रमणीय तट पर विहार करनेवाले हैं, जिनके कानोंमें धारण किये हुए कुण्डल हिलते हुए झलमला रहे हैं, सहस्रों गोप सुन्दिरियोंके निर्निमेष नेत्र जिनके श्रीअङ्गोंमें प्रतिबिम्बित होकर विकसित कमल पुष्पों की माला सदृश शोभा पा रहे हैं, जो नृत्य करते हुए अतिशय शोभायमान हो रहे हैं, उन शरणागत पालक श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम है ॥६-७॥

जो पापोंके विनाशक हैं, श्रीगोवर्द्धनको धारण करने वाले हैं, पूतनाके विनाशकारी तथा तृणावर्तके प्राण संहारी हैं, उन श्रीकृष्णको नमस्कार है ॥८॥

जो पूर्णस्वरूप हैं, जिनमें मोहका सर्वथा अभाव है, जो परम विशुद्ध, परम पवित्र, अद्वितीय और सब के पूज्य हैं, उन श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम है ॥९॥

हे परमानन्द स्वरूप ! हे परमेश्वर ! मुझ पर प्रसन्न होइये। प्रभो ! मुझे आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक व्यथा) रूपी सर्पोंने डस लिया है, कृपया मेरा उद्धार कीजिए ॥१०॥

हे कृष्ण ! हे रुक्मिणी-कान्त ! हे गोपसुन्दरियों का चित्त चुराने वाले श्यामसुन्दर ! मैं संसार-समुद्र में डूबा जा रहा हूँ। जगद्गुरो ! मेरा उद्धार कीजिये ॥११॥

हे केशव ! हे क्लेशहारी ! हे नारायण ! हे जनार्दन ! हे गोविन्द ! हे परमानन्द ! हे माधव ! मेरा उद्धार कीजिये ॥१२॥

अधिरोहवादमें गुरु-ग्रहण

अधिरोहवाद (भौतिकवादका आश्रय कर शुष्क युक्ति और तर्क, कर्म, ज्ञान, तप आदिके द्वारा अप्राकृत परतत्त्वको पानेकी चेष्टा) का अवलम्बन करने से जीव कृष्ण विमुख हो जाते हैं। परन्तु अवतारवाद (भगवानके शरणागत होकर विशुद्ध भक्तिका आश्रय कर अप्राकृत परतत्त्वको पानेकी चेष्टा) को ग्रहण करनेसे पुनः वे कृष्णोन्मुख हो सकते हैं। कृष्णोन्मुख जीव ही वैष्णव कहलाते हैं। स्वल्प भाग्यवाले बद्धजीव अधिरोहवादीको गुरु समझते हैं। उससे उनका हित होना तो दूर रहा, उलटे अहित ही होता है। अधिरोहवादी गुरुके शिष्य भी अधिरोहवादको ही ग्रहण करते हैं और शीघ्र ही उन्हें भी भगवद्भक्तिसे विच्युत होना पड़ता है। अधिरोहवादियोंकी ऐसी धारणा होती है कि हमारे गुरुदेव भ्रान्त हैं और हम ही उनका सुधार करेंगे। उस समय अधिरोहवादी गुरु बड़े संकटमें पड़ जाते हैं। भगवद्भक्तिमें अधिरोहवादके लिए तनिक भी स्थान नहीं है। वहाँ तो विष्णुकी या अवतारवादकी ही प्रबलता है।

अधिरोहवादियोंमें यद्यपि गुरु करनेकी विधि है, किन्तु यह अविद्या-जनित है अर्थात् सत्य नहीं है—परिवर्त्तनशील है। अधिरोहवाद सर्वदा परिवर्त्तनशील है, इसलिए अधिरोहवादी गुरु भी अपने पूर्व आचार्योंके मतोंमें परिवर्त्तन करते हैं। अधिरोहवादियोंके गुरु अनित्य हैं, शिष्य भी अनित्य हैं और उनके उपदेश भी अनित्य हैं। उनमें परस्पर जो सम्बन्ध होता है वह भी अनित्य होता है, क्योंकि कालके प्रभावसे वह भी परिवर्त्तन हो सकता है। परन्तु भगवान नित्य सत्य हैं, क्योंकि वे देश और कालसे अतीत वस्तु हैं।

स्वयं भगवान श्रीकृष्णने ब्रह्माको कैतव-(अर्थ-धर्म-काम और मोक्षकी वासना) रहित विशुद्ध परमसत्यका उपदेश प्रदान किया। ब्रह्माने इसीका नारद जीको, नारदजीने श्रीव्यासदेवको, श्रीव्यासदेवने

श्रीमन्मध्वाचार्यजीको उपदेश किया। श्रीईश्वरपुरीपाद, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैतप्रभु आदिने भी इसी उपदेशको गुरु-परम्पराके माध्यमसे प्राप्त किया। शुद्ध वैष्णवोंका यह सिद्धान्त है कि श्रीगुरुदेव सर्वदा नित्य सत्यमें अधिष्ठित हैं और उनमें भ्रम-प्रमादादि दोष या किसी प्रकारकी असम्पूर्णता नहीं है। अवतारवादको माननेके कारण वैष्णव लोग नित्य सत्य स्वरूप भगवानके आश्रित होते हैं। अधिरोहवादियों के विचारका इस सिद्धान्तसे खण्डन हो जाता है। अधिरोहवादी व्यक्ति अपने-अपने पूर्व गुरुओंके ऊपर आधिपत्य जमानेकी चेष्टा करते हैं। इसी कारणसे वे नित्य सत्यको ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं।

अवतारवादका तिरस्कार कर जो कुछ भी प्रचार किया जाता है, वह तो केवल कलियुगका ही प्रभाव है। परन्तु शुद्ध वैष्णवगण ऐसे प्रचारका समर्थन नहीं करते। ऐसे प्रचारके द्वारा अधिरोहवादी संसार में प्रतिष्ठा संग्रहकर अपनी इन्द्रिय तृप्तिकी ही चेष्टा करते हैं। इसे कदापि शुद्ध भक्तिका अनुष्ठान नहीं कहा जायगा। यह तो विषय-कथा या ग्राम्य-कथाका ही प्रचार है। शास्त्र और गुरुवाक्य ही वैष्णवोंके एकमात्र अवलम्बन हैं। वैष्णवगण भोगपरायण कर्मियोंके विचारोंको कदापि ग्रहण नहीं करते। वे तो केवल शास्त्र और गुरुके विचारोंको ही ग्रहण करते हैं।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

परहिंसा और दया

साधारणतः परहिंसा महापाप है। परहिंसा सब पापोंका मूल है। इसलिए यह पापसे भी गुरुतर है। जो व्यक्ति बड़े भाग्यसे कृष्ण भक्तिमें प्रवृत्त होते हैं, स्वभावतः उनमें परहिंसाकी प्रवृत्ति नहीं रहती। नारदजी कहते हैं:—

एते न ह्यद्भुता व्याध तवाहिंसादयो गुणः।
हरिभक्तौ प्रवृत्तौ ये न ते स्युः परतापिनः॥

हे व्याध! तुममें अहिंसादि गुणोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि भगवद्भक्तजन स्वभावतः ही परपीड़क नहीं होते।

अन्य प्राणियोंका वध करना ही परहिंसाकी पराकाष्ठा है। श्रीचैतन्य भागवतमें लिखा है:—

भक्तिहीन कर्मे कोन फल नहीं हय।
सेई कर्म भक्तिहीन परहिंसा जाय॥

अर्थात् भक्तिहीन कर्मसे किसी प्रकारका सुफल नहीं होता। वह कर्म जिसमें परहिंसा हो, भक्तिहीन है।

जीवहिंसा भक्ति-विरुद्ध है और परोपकार भक्ति के अनुकूल है।

जिससे परोपकार हो वही कर्म भक्ति समस्त है और जिस कर्ममें परहिंसा हो, वह भक्ति विरुद्ध है। ऐसे कार्यसे किसी प्रकारका हित नहीं होता।

मांस भोजनके लिए परहिंसा अवश्यम्भावी है। जिस कार्यमें जीव-हिंसा है, वह कार्य भक्ति प्रति-

कूल होता है। अतएव मांस भोजनसे दूर रहना चाहिए।

शास्त्रोंमें चित्तकी आर्द्रताको ही भक्तिभावका लक्षण बतलाया गया है। कृष्णभक्तिमें जैसी आर्द्रता होती है, जीवदयामें भी वैसी ही आर्द्रता होती है। जीव-दया कृष्णभक्तिका एक अङ्ग है। दयाहीन व्यक्ति कभी भक्त नहीं हो सकते। यदि कहीं भक्ति-हीन दयालुता देखी भी जाय, तो उसे केवल चित्तकी आर्द्रताका संकुचित भाव ही समझना चाहिये। उपर्युक्त संकुचित भाव दूर होने पर भगवद्भक्ति और जीव-दया दोनों एक ही समान जान पड़ती हैं।

इसलिये श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने श्रीचैतन्यभागवत में ऐसा ही उपदेश दिया है:—

प्रभु बोले—विप्र सब दम्भ परिहरि।
भज गिया कृष्ण—सर्व भूते दया करि॥

अर्थात् हे ब्राह्मण! सभी प्रकारके अभिमानोंका त्याग कर सभी प्राणियों पर दयादृष्टि रखते हुए कृष्णका भजन करो।

सब भूतोंके प्रति दया तीन प्रकारकी होती है। यथा:—दैहिक, मानसिक एवं आत्मिक

(१) जीवके स्थूल देहगत दयाको दैहिक दया कहते हैं। यह सत्कर्म की श्रेणीमें माना जाता है। भूखेको भोजन देना, पीड़ितों और रोगियोंको औषध आदि देना, प्यासेको जल पिलाना, वस्त्रहीनको वस्त्र देना, यह सब देह सम्बन्धी दया है।

(२) विद्यादान ही मानसिक दया कहलाती है।

(३) आत्मासम्बन्धी दया ही सबसे उत्तम है। जीवोंको कृष्णभक्ति प्रदान कर सांसारिक क्लेशोंसे उद्धार करना ही आत्मिक दया है।

कृष्णभक्तिका प्रचार या भक्तिदान ही नित्यदया है, इसके अतिरिक्त दूसरी प्रकारकी दयाएँ अनित्य हैं

प्रत्येक वैष्णव ही भूतोंके प्रति दया रखते हैं। यह उनकी महानताका परिचय है। भक्तिके साथ ही साथ दयाका भी उदय होता है। सभी भक्त सब तरहसे दया नहीं कर पाते। भक्तोंमें जो धनवान और बलवान हैं, वे जीवोंपर शारीरिक और मानसिक दया कर सकते हैं। किन्तु भक्तोंको कृष्ण भक्ति रूपी धनके सिवा दूसरा धन नहीं है, वे जीवोंकी संसार-निवृत्ति एवं कृष्णभक्ति प्राप्तिके साधनमें सहायता करनेके लिये सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। इसीलिये वे स्थान-स्थान पर उच्च-संकीर्त्तनका आयोजन करते हैं। इसके अतिरिक्त भक्तिके दूसरे-दूसरे सभी अङ्गों का भी अनुष्ठान करते हैं। यही दया नित्य है। दूसरे दो प्रकारकी दया अनित्य हैं।

शुद्ध भक्त ही यथार्थ दयालु हैं, कर्मी और ज्ञानी नहीं

शुद्ध भक्त जीवोंकी अधोगतिको लक्ष्य कर सर्वदा द्रवित होते हैं एवं यथासाध्य उनकी शुभगतिके लिये चेष्टा करते हैं। कर्मकाण्डी व्यक्ति जीवोंका नित्य मंगल नहीं कर सकते। केवल देह और मन सम्बन्धी दया ही कर सकते हैं। शुद्धभक्त भक्तिप्रचार द्वारा जीवोंका नित्यमंगल करनेके लिये चेष्टा करते हैं। दया भक्तिसे कोई पृथक् वस्तु नहीं है। भक्ति और दयाका मूलवृत्ति—प्रेम है। वही प्रेम कृष्णके प्रति होनेसे भक्ति है, सज्जनोंके प्रति होने पर मैत्री है, अज्ञ व्यक्तियोंके प्रति प्रयुक्त होनेपर दया है और भगवत् विद्वेषी अर्थात् असत् व्यक्तिके प्रति प्रयुक्त होने पर उपेक्षा है।

—जगत्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

भगवानकी कथा

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ८, संख्या ३, पृष्ठ ६७ से आगे)

आसुरिक वृत्तिके अनेक कारण होने पर भी वर्तमान निबन्धमें उनमेंसे तीन प्रधान कारणोंके सम्बन्ध में आलोचना कर रहा हूँ। वे तीन कारण हैं—काम, क्रोध और लोभ। इन तीनोंको ही आत्मनाशक या नरकका द्वार बतलाया गया है। भगवान ही इस जगतके एकमात्र स्वामी और भोक्ता हैं—इसे भूल जानेसे ही इस दृश्यमान जगतको भोग करनेकी हम में प्रबल आकांक्षा उत्पन्न होती है। भोगकी अतृप्तिमें क्रोध होता है और क्रोधमें भरकर 'ये अंगूर खट्टे हैं—ऐसा कहकर हम भी लोमड़ीकी तरह त्यागका अभिनय करते हैं। इस कपट त्यागके मूलमें वृहत्तर लोभ और भोगकी प्रवृत्ति छिपी होती है। यह भी काम वासनाका ही एक और स्तर है। अतएव इस भोग और त्यागकी भूमिकाका परित्याग कर जब तक हम आत्म-भूमिकामें प्रतिष्ठित नहीं होते, तब तक भगवत्-कथा नहीं समझ सकेंगे और आसुरिक वृत्ति में ही डूबे रहेंगे।

आसुरिक भूमिकाका त्यागकर आत्म-कल्याणके पथमें अग्रसर होनेके लिए शास्त्रोंकी विधियोंका पालन ही एकमात्र उपाय है। उच्छृङ्खल अशास्त्रीय और विधि-बहिर्गत सभी कार्य कामाचार हैं। ऐसे कामाचारोंके द्वारा न तो क्रोध और लोभका ही दमन हो सकता है और न कभी सुख और शान्ति ही पायी जा सकती है। अतएव "in the dispensation of providence mankind," किस प्रकार उत्तम-गति लाभ कर सकता है अथवा किस प्रकार शान्ति प्राप्त कर सकता है, इसके लिए कौन पथ-प्रदर्शन करेगा? शास्त्र ही हमारे एकमात्र अवलम्बन हैं। शास्त्र-विहित कर्मों के आचरणसे ही हम कामाचार या यथेच्छाचारसे बच सकते हैं।

परन्तु जिस युगमें निवास कर रहे हैं वह घोर कलियुग है। इस युगके मनुष्य प्रायः अल्पायु, मन्द बुद्धि और स्वल्प भाग्यवाले होते हैं। वे सर्वदा रोग, शोकादिके द्वारा कष्ट पाते हैं। स्वभावतः शास्त्रोंके प्रति उदासीन होते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध आदि जितने धर्म सम्प्रदाय हैं, वे शास्त्र-विधियोंका उल्लंघन कर यथेच्छाचारसे रह रहे हैं। ये शास्त्र-विधियोंका पालन करना तो दूर रहे, उलटे शास्त्रोंका कदर्थ करनेमें बड़े कुशल हैं। आसुरिक प्रवृत्तियोंसे प्रेरित होकर और भी दृढ़ताके साथ भोगोंमें लिप्त होते हैं।

इन कलिहत जीवोंका उद्धार करनेके लिए भगवान एवं भगवत् भक्त सदा सर्वदा चिन्तित रहते हैं। भगवत् भक्त वैष्णवगण कृपाके समुद्र एवं वाञ्छा-कल्पतरु हैं। वे जीवोंको भगवत्-सम्बन्धी ज्ञान प्रदान कर उनका परम कल्याण करते हैं। परम-करुणामय श्रीचैतन्यमहाप्रभुने कलियुगी जीवोंकी दुर्दशा देखकर उनके लिए जो शिक्षाएँ प्रदान की हैं, वे जनसाधारणके लिए हितकर हैं। दूसरे युगोंमें जिस तरह वेद, वेदान्त, वेदांङ्ग आदिके पठन-पाठन

से चित्त-शुद्धिकी संभावना रहती थी, अब ऐसा सम्भव नहीं है। इसीलिए ब्रह्मचर्यादिका पालन करते हुए शास्त्रानुशीलन करना जनसाधारणके लिए असंभव है। अनेक प्रकारके दोषोंसे युक्त व्यक्ति वेदान्तादिका अध्ययन करके भी कुछ लाभ नहीं उठा सकते। संस्कार-वर्जित, अनधिकारी व्यक्तियोंके निकट वेदान्त की व्याख्या करना केवल समय नष्ट करना है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी ने ही ऐसे कलि-पीड़ित जीवोंपर असीम दया की है। इसलिए जो मनुष्य श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी कृपाको ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं, वे चिरकाल ही वंचित रहेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जो भाग्यवान व्यक्ति श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी कृपा ग्रहण करनेमें समर्थ हुए हैं, उन्हें पुनः 'In the dispensation of providence', मायाके बन्धन में नहीं पड़ना पड़ता, परन्तु जो लोग अनादि कर्मफलके वशीभूत होकर माया द्वारा दुःखित हैं, उनके लिए भगवानने कर्मयोगकी व्यवस्था की है।

तत्त्वविद् पण्डितजन कहते हैं कि नौ लाख जलचर, बीस लाख स्थावर, ग्यारह लाख कीड़े-मकोड़े, तीस लाख पशु एवं चार लाख मनुष्य (कुल चौरासी लाख) योनियोंके पश्चात् भारत भूमिमें मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। उपरोक्त योनियोंमें भ्रमण करते-करते कितने करोड़ों वर्ष बीत जाते हैं, इसकी कोई गणना नहीं। भारतवर्षमें जन्म लेकर भी यदि हम मायाजालमें चक्कर काटते रहें, तो हमारे लिए इससे बढ़कर दुर्भाग्यका विषय और कुछ नहीं हो सकता। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने कहा है—

"भारत भूमिते हइल मनुष्य-जन्म जार।
जन्म सार्थक करि कर पर-उपकार॥"

मनुष्य जीवनकी सार्थकता इसीमें है कि हमारे महाजनोंने जिस पथका अवलम्बन किया है, हम भी उसी पथका अनुसरण करें। मायाके जाल से छुटकारा प्राप्तकर श्रीभगवानके चरण कमलोंको प्राप्त करनेके लिए भारतवर्षके मनीषियोंने जैसी चेष्टा की है, वैसी चेष्टा और कहीं देखने या सुननेमें नहीं आती। पाश्चात्य देशोंके मनोविज्ञान और जड़विज्ञान सभी मायासृष्ट शरीर तथा मनपर ही केन्द्रित हैं। इसलिए उनसे नित्य-शान्ति नहीं मिल सकती। भारतवासी भी उन्हींका अनुकरण कर ध्वंशके पथमें जा रहे हैं। वे अपनी पैत्रिक सम्पत्तिका त्यागकर दूसरोंके यहाँ फूटी कौड़ी भिक्षा कर रहे हैं और इसीमें अपनी स्वाधीनताका अनुभव कर रहे हैं। अणुचेतन जीव का पूर्णचेतन भगवानके साथ जो नित्य सम्बन्ध है, उसके सम्बन्धमें पाश्चात्य देशोंमें कुछ भी अनुसंधान नहीं हुआ है। बहुमुखी भौतिक उन्नति करके भी वे विषयोंके विनाशकारी प्रचण्ड लपटोंसे झुलस रहे हैं। भारतवासी भी उसी लपटमें पड़कर अपने को सौभाग्यवान मान रहे हैं। पाश्चात्य विद्वत्-समाज भारतवर्षके द्वारा ही शान्तिकी आशा करता है। शान्तिका संदेश भारतवर्षसे ही वहाँ पहुँचेगा, ऐसा हमारा दृढ़-विश्वास है।

भगवान् श्रीकृष्णने हमारे भविष्यमें आनेवाली दुर्दशाकी चिन्ता करके ही विषय—विषानलसे हमें बचानेके लिए अपने श्रीमुखारविन्दसे गीता जैसे मङ्गलमय शास्त्रका उपदेश दिया है।

साधारण कर्म एवं श्रीगीतोक्त कर्मयोगमें बहुत अन्तर है। यद्यपि आजकल बहुतसे कर्मी अपनेको कर्मयोगी कहते हैं, तथापि यही देखा जाता है कि अपने कर्मोंका फल वे आप ही भोग रहे हैं। गीता

शास्त्रमें कई स्थानोंमें 'बुद्धियोग शब्दका प्रयोग किया गया है । भगवत् भक्तिको ही बुद्धियोग कहते हैं । गीतामें भगवान्‌ने कहा है—"ददामि बुद्धियोग तं येन मामुपयान्ति ते ।" और भी कहा है—"भक्त्या मामभिजानाति", "भक्त्याहमेकया ग्राह्यः" इत्यादि । इसलिये बुद्धियोग कहनेसे भक्तियोगका ही बोध होता है । भगवान् भक्त-वत्सल' कहलाते हैं क्योंकि एकमात्र भक्तिके द्वारा ही उन्हें पाया जाता है ।

बुद्धियोगके द्वारा प्रेरित कार्यसे ही मनुष्यको नित्य-शान्ति मिल सकती है । गीता शास्त्रमें बुद्धि योगके सम्बन्धमें कहा गया है—

"एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्वमां शृणु ।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥
नेहाभिक्रमोनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥
(गीता २।३-६-४०)

सांख्य योगके द्वारा जो शान्ति पायी जाती है, वह आधुनिक व्यक्तियोंके लिये अत्यन्त कठिन है । किन्तु बुद्धियोग या भगवत्-भक्तिके द्वारा नित्य शान्ति सहज ही पायी जा सकती है। भक्तिसे सम्बन्धित कार्योंका कभी भी नाश नहीं होता। जितना ही उनका अनुष्ठान करें, उतने ही वे हितकारी होते हैं । भक्ति-धर्मका थोड़ासा अनुष्ठान भी साधक-को संसार-बन्धन रूपी महाभयसे परित्राण करनेमें समर्थ है । (क्रमशः)

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

श्रीमद्भागवतमें वात्सल्य भाव

[गताङ्कसे आगे]

बहुत दिनोंके पश्चात् एक समय श्रीकृष्ण और बलरामपर होने वाले प्रतिदिनके राक्षसोंके उपद्रवों एवं अन्य उत्पातोंको देखकर ज्ञान और अवस्थासे वृद्ध उपनन्दनामक गोपने सब गोप परिवारको बुला-कर कहा कि कन्हैया और बल भैयाकी सुरक्षाके लिये हम सभीको वृन्दावन चलकर निवास करना चाहिये । वहाँ सभी प्रकारका सुख है । इस सम्मति-को सभीने स्वीकार किया और सभी गोपवृद्ध अपने अपने परिवारको लेकर नन्द परिवारके साथ वृन्दा-वन चले । सभीने अपने-अपने शकट जोड़ लिये; गोधनको आगे कर लिया, अपना सामान गाड़ियोंमें भर लिया । एक ओर गोप श्रीकृष्णके चरित्रोंका गुणगान करते, गाते-बजाते आगे बढ़ने लगे, तो दूसरी ओर गोपियाँ नवीन वस्त्र पहिने रथोंपर आसीन हो कोमल सुरीले कण्ठसे श्रीकृष्णकी लीला माधुरीका कथन करती चलने लगीं । उस समयकी शोभा अपूर्व थी ।

तथा यशोदारोहिण्यावेकं यकटमास्थिते ।
रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथा श्रवणोत्सुके ॥
(भा० १०।११।३४)

यशोदा और रोहिणीजी भगवान् एवं बलभद्रके साथ-साथ एक सुन्दर सुसज्जित गाड़ीमें शोभायमान हो रही थीं और बड़े ध्यानसे अपने कृष्ण और राम के चरित्रोंको सुन रही थीं। इस प्रकार शनैः - शनैः चलता हुआ यह समूह वृन्दावन पहुँचा और वहाँ आवास बना कर रहने लगा। वहाँ श्रीकृष्ण और बलरामने विविध प्रकारकी बाललीलाएँ कर स्वजनोंको परमानन्दित किया। वृन्दावन, गोवर्धन, यमुनापुलिन और सुन्दर वनोंकी शोभा देख राम-माधवके हृदयमें बहुत ही प्रसन्नता छा गई और वे लोकोंके एक मात्र पालक (रक्षक) होकर भी वत्सपाल होकर छोटे-छोटे वत्सोंको भी चराने लगे। प्रातःकाल वन जाते, दिन भर वहाँ निवास करते, विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते, सांझ होनेपर, गोरजसे जिनकी अलकावलि धूसरित हो रही है, वनके रंगबिरंगे फूल केशोंमें लगा रक्खे हैं, गोप बालकोंसे हास परिहास करते वेणु बजाते वापस लौटते। तब माता यशोदा और रोहिणीजी अपने सारे दिनके विरहित हृदयको शान्ति देतीं, नेत्रोंको अपने लालका मुखड़ा देख सफल करतीं—

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ।
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥
गताध्वानश्रमौतत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ।
नीवीं विसृज्य रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ॥
जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥
(भा० १०।१५।४४ से ४६)

वनसे आनेके समय पुत्र-वत्सला यशोदा और रोहिणीजी अपने पुत्रोंकी इच्छाके अनुकूल उनके सुख साधनके लिये उत्तम तैयारियाँ कर रखतीं, राम-कृष्ण अङ्ग मर्दन, स्नान, आदि कर अपने श्रमको मिटाते सुन्दर वस्त्र और दिव्य पुष्पोंकी माला धारण कर दिव्य चन्दन लगाते। बड़े प्यारसे माताओंके द्वारा परोसा गया मिष्टान्नसे युक्त भोजनकर सुन्दर सुकोमल शय्या पर शयन करते। यही नित्यका क्रम रहता और माताएँ अपने बालकोंका मुख देख-देख गर्वसे फूली नहीं समातीं। ऐसे पुत्रोंसे वे अपनेको भाग्य-शालिनी मानतीं, दूसरी स्त्रियाँ इनके भाग्य पर ईर्ष्या करतीं।

बाललीलामें अनुरक्त श्रीकृष्णने एक दिन अघनाशिनी कालिन्दीके जलको कालीयनागके विषसे दूषित जान अपने गोप-ग्वालोंको, पशु-पक्षियोंको वि। के कारण मृत देख कर कालीयको निकाल कर यमुना को निर्विष करनेका निश्चय कर लिया और अपने साथियोंके मना करने पर भी कालीय दहमें कूद पड़े। वहाँ पहुँच कर कन्हैयाने कालीय नागसे युद्ध किया और उसे पराजित कर नाथ लिया। इधर व्रजमें कुहराम मच गया। गोपियाँ अत्यधिक दुःखी हो गईं नन्दरानी और नन्द आदि रुदन करते-करते मृतकवत् हो गये और यमुना नदीमें उन्होंने गिरने की ठान ली। सबने बड़ी कठिनाईसे हाथ पकड़ कर उनको रोका। यह रूप अधिक समय तक नहीं रहा। दुःखके पश्चात् सुखका उदय हुआ, पूँगी बजाते हुए कालीय नागके फणों पर नृत्य करते हुए कालीय-दम। जलसे बाहर यमुनाके किनारे पर आये। प्यारे श्यामसुन्दर को आया देख सभीके गये हुए प्राण फिरसे देहमें आ गये। चारों ओर से दौड़ कर सभी व्रजराजसे मिले—

यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥
(भा० १०।१७।१९)

भाग्यशालिनी सती यशोदाने मृत्युके मुखमें गये अपने प्रिय पुत्रको फिरसे प्राप्त कर गोदीमें ले लिया; छातीसे लगा कर बार-बार उनके अङ्गका स्पर्श कर आनन्दाश्रु गिराने लगी।

श्रीकृष्णकी सारी बाललीलाएँ विचित्रतासे पूर्ण थीं। उनके मूलमें कुछ रहस्य होता था, जिसे जानना सर्व साधारणके लिये अगम्य था। पहले व्रजवासी बड़ी श्रद्धा भक्तिसे देवराज इन्द्रकी पूजा करते थे। इन्द्रको ही अन्न एवं मंगलका दाता मानते थे। परन्तु श्रीकृष्णने इन्द्रकी पूजा बन्द करा दी और उस सिद्ध सामग्रीसे गोवर्धन पर्वतकी पूजा करा उनके सामने अन्नका कूट समर्पित किया। इससे इन्द्र अपने स्वभाव के अनुसार अपना अपमान समझ कर कुपित हो गये। उन्होंने व्रजको डुबानेका निश्चय कर लिया। परन्तु श्रीकृष्णके द्वारा रक्षित व्रजका वे बाल भी बाँका न कर सके। उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगा फिर मूसला धार वर्षा की;पर श्रीकृष्णने गोवर्द्धनको अपनी अँगुली पर धारण कर व्रजवासियोंकी, गोधनकी एवं व्रजकी रक्षा की। श्रीकृष्ण पूरे सात दिनों तक पर्वतको धारण किये रहे। अन्तमें हारकर इन्द्रने सुरभिधेनुको आगे कर क्षमाकी भीख मांगी। इधर गोपगण श्रीकृष्णको अति श्रमित समझ उनके हाथोंको दाबने लगे।

यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्चबलिनां वरः ।
कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥
(भा० १०।२५।३०)

यशोदा, रोहिणी, नन्दरायजी, बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदाऊ भैया, सभी स्नेहसे कातर हो श्रीकृष्णसे मिले और आशीर्वाद देने लगे।

यहाँ तक भागवतमें संयोगवात्सल्यका वर्णन है। इसके आगे वियोगवात्सल्यका आरम्भ होता है। जिसमें व्रज-सर्वस्व लालका वियोग दर्शित होता है। धनुष यज्ञमें राजा कंसने गोप ग्वालोंके साथ राम-कृष्णको लिवानेके लिये अक्रूरको भेजा। अक्रूरने व्रजमें आकर सारी कथा सुनाई। सभी गोप व नन्द अपने राम-श्यामके साथ मथुरा चलनेको प्रस्तुत हो गये। मथुरा प्रस्थानका समाचार व्रजके कोने-कोनेमें फैल गया। गोपियोंने यह संवाद सुना तो उनके अंग शिथिल हो गये, नेत्रोंसे अश्रुओंकी धाराएँ बह चलीं, श्वांसकी गति रुद्ध हो गई। वे रथके सामने आकर गतःप्राणा संज्ञा-शून्य होकर गिर पड़ीं। नन्दरानी एवं रोहिणी सबकुछ भूल गईं। वे उन्मादिनीकी भाँति नेत्रोंको विस्फारित कर जड़वत् हो गईं। श्रीकृष्णने अपने स्नेहियोंकी दशा देखी और बहुत शीघ्र आवेंगे, ऐसा कहकर विदा हो गये। मथुरा पहुँच कर श्री-कृष्णने कंसका बध किया। अन्तमें सारा घटनाचक्र बदल गया। श्यामने समझा-बुझाकर अपनी मायासे मोहित कर गोपोंके साथ नन्दको बहुत-सा धन दे मथुरासे विदा कर दिया। वे हतमनस्क होकर अपने व्रज लौट आये। उनको नन्दरानीने, गोपियोंने क्या-प्रताणनाएँ दीं, यह वर्णनातीत है। परन्तु श्रीकृष्ण मथुरामें कार्यान्तरोंमें लीन रहने पर भी व्रजकी और व्रजवासियोंकी, माता यशोदा, नन्द, गोधनकी याद भुलाने पर भी न भूल सके और उन्होंने यथा समय अपने सखा अनुचर ज्ञानवयोधिक उद्धवको सन्देश देकर भेजा।

तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ।
नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽर्चयत् ॥
(भा० १०।४६।१४)

श्रीकृष्णके प्यारे अनुचर सखा उद्धवको समीप आते देख सभी व्रजवासी उनसे प्रसन्न हो मिले। नन्दरायने, श्रीकृष्ण ही हैं—ऐसा मान कर पूजा की, खीर आदिका उत्तम भोजन करा कर पलङ्ग पर सुखपूर्वक बिठा कर उद्धवसे पूछा कि हे महाभाग उद्धवजी ! हमारे मित्र शूरसेनके पुत्र वसुदेवजी कष्ट-से निर्मुक्त हो पुत्रादि अपने कुटुम्बके साथ, बन्धुओंसे वेष्टित भला कुशलसे तो हैं। बहुत अच्छा हुआ जो पापी कंस अपने छोटे भाइयोंके साथ अपने ही पापसे मारा गया, जो सदा धर्मशील भले मानुस यदुवंशियोंसे सदा वैर रखता था—

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।
गोपान्व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनंगिरिम् ॥
अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ।
तर्हि द्रक्ष्यामतद्वक्त्रं, सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥
दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ।
दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥
स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्ग निरीक्षितम् ।
हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वाः शिथिलाः क्रियाः ॥
सरिच्छैलवनोद्देशान् मुकुन्दपद भूषितान् ।
आक्रीडानीक्षमाणानां मनोयाति तदात्मताम् ॥
(भा० १०।४६।१८ से २२)

अच्छा उद्धवजी ! कृष्ण कभी हमें भी याद करते हैं ? यह उनकी माँ है, स्वजन-सम्बन्धी हैं, सखा हैं, गोप हैं, उन्हींको अपना स्वामी और सर्वस्व मानने-वाला यह व्रज है, उन्हींकी गौएँ, वृन्दावन और यह गिरिराज हैं, क्या वे कभी इनका स्मरण करते हैं ? भला कृष्ण स्वजनोंसे मिलने एक बार भी यहाँ आवेंगे ? जब आवेंगे, तब सुन्दर नासिकायुक्त, सुन्दर मंदहास्य व नेत्रोंवाले मुखका दर्शन करेंगे। देखो, महात्मा श्रीकृष्णने दावानलका पान किया, वायु सहित वर्षासे बचाया, अरिष्टासुर, अघासुर और भी अनेक दुरत्यय मृत्युओंसे हमारी रक्षा की। प्रिय उद्धव ! हम भी कृष्णके पराक्रम, लीलासे कटाक्ष सहित देखना, हँसना व भाषण—इनका स्मरण करते हैं। तब हम सब कुछ भूल जाते हैं। श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंसे अलंकृत नदी पर्वत वनके प्रदेश जो उनके क्रीड़ाके स्थान हैं, उन्हें देखते हैं। तब हमारा मन तद्रूप हो जाता है।

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ।
अत्युत्कण्ठोऽभवत् तूष्णीं प्रेमप्रसर विह्वलः ॥
यशोदावर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ।
श्रृण्वंत्यश्रूण्यवास्राक्षीत्स्नेह स्नुत पयोधरा ॥
(भा० १०।४६।२७,२८)

श्रीकृष्णमें प्रेम बुद्धि वाले नन्दरायजी ऐसे स्मरण कर अति उत्कण्ठित और प्रेमके प्रसरसे विह्वल हो चुप हो गये। यशोदाने जो वर्णन किये गये पुत्रके चरित्र सुने तो उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और स्तनोंसे दूध झरने लगा।

इस प्रकार वात्सल्य रसका सजीव चित्र भगवान् व्यासने भागवतमें चित्रित किया है, जो भाग्यशाली वैष्णवोंके लिये दर्शनीय है।

—बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न।

नन्दोद्धार

[गताङ्क से आगे]

अथवा द्वादश तरणि उदित थे
या जग की सम्पूर्ण दाम थी।
या अगणित राकेश उदित थे
अदित - पुत्र - विष्णु-सुवाम थी ॥३१॥

वरुण विलोकि विभा वन-पुर में
चकित ठगा सा मौन रह गया।
उस मायापति की माया से
जीवन पति का भौन भर गया ॥३२॥

वरुण विलोक उन्हीं का आनन
रह न सका सिंहसन ऊपर।
दौड़ शीघ्र ही दण्ड सदृश वह
धम्म गिरा उनके चरणों पर ॥३३॥

विभों ! विश्वपति ! विनयशील यह
दास तुम्हारा हो विनीत अब।
रहा जोड़ कर सम्मुख प्रभु के
चाह रहा आज्ञा पुनीत तव ॥३४॥

आज पुरी पावन मम होकर
अमरावति महिमा - वाली हो।
उठा रही उन्नत ललाट निज
पा तुझ जैसे प्रतिपाली को ॥३५॥

प्रभो ! तुम्हारी इक कटाक्ष में
करता भ्रमण अवनि और अम्बर।
ठहर सकूँगा क्या सम्मुख मैं
पाहि पाहि हे ! हे ! करुणाकर ॥३६॥

मन्दमन्द मुसकान मनोहर
खेल रही जिसके आनन पर।
मनोमध्यहृद रक्त कमल पर
छिटक रही थी कला कला धर ॥३७॥

मंजु मृदुल मन हरन मन्दमधु
गिरा गंभीर कृष्ण की निकली।
मानो सान्द्र मेघ वाणी ही
स्वयं मास माधवमधि निकली ॥३८॥

हे जलपति ! ममपिता नन्द नृप
जलज - नाथ - जा के जल में जा।

करने पावन निज जीवन को
रखे पैर जीवन-पहि चर आ ॥३९॥
ले आये हैं उन्हें पकड़ कर
और जकड़ कारा में डाले।
उन्हें मांगने मैं आया हूँ
पश्चिम - पति तब लोक निराले ॥४०॥
सुनकर सत्वर सलिल नाथ ने
मांगी क्षमा पैर में पड़कर।
डांट बता दी उन्हीं चरों को
लाये जो व्रज - ईश पकड़ कर ॥४१॥
निखिल अखण्ड ब्रह्माण्डपति को
बिठलाकर निज के सिंहासन।
अनुनय विनय सहित कर डाली
पश्चिम दिग्पालक नीराजन ॥४२॥
नन्दसहित आनन्द विदाकर
चिदानन्द सह स्वयं सालिलपति।
व्रज - तट - तीर गये पहुँचाने
गये अस्त गिरि तभी कमलपति ॥४३॥
रोते और विलपते व्रज के
बाल - वृद्ध अबला के आगे।
निकले कृष्णचन्द नन्द ले
मनो भाग्य - व्रज वसुधा जागे ॥४४॥
देखि उन्हें आनन्द मग्न हो
व्रजवासी प्रमुदित हो हो कर।
गाने लगे सुगीत मनोहर
देते प्राण अभी रो रोकर ॥४५॥
इस विधि से नृप नन्द महर ने
वरुण लोक ते पाई मुक्ति।
मात यशोदा हुई प्रमोदा
विरहानल से पाई मुक्ति ॥४६॥
इसका गान करेगा 'शङ्कर'
प्राप्त करेगा नर अथवा सुर।
कृष्ण चन्द्र सान्निध्य अवशि चिर
ताप - नाशिनी भक्ति सौख्यकर ॥४७॥

श्रीशङ्करलाल चतुर्वेदी, एम. ए. साहित्यरत्न

जिनकी तिरोभाव तिथियाँ मनायी गयी हैं

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती—

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती दक्षिणके प्रसिद्ध श्रीरंगम के निकट कावेरीके तट पर बसे हुए बेलाण्डि नामक गाँवके निवासी थे। ये पहले श्रीलक्ष्मी नारायणके उपासक—श्रीरामानुजीय वैष्णव थे। प्रसिद्ध छः गोस्वामियोंके अन्तर्गत श्रीगोपाल भट्टके ये पितृव्य (चाचा), दीक्षा गुरु तथा विद्यागुरु थे। श्रीचैतन्य महा प्रभुके सम्पर्कमें आकर श्रीराधाकृष्णके बड़े ही-रसिक भक्त बन गये थे। श्रीमन्महाप्रभुजीके चरणों में इनकी अगाध निष्ठा थी। अपने ग्रन्थोंमें सर्वत्र ही इन्होंने महाप्रभुजीको साक्षात् कृष्णके रूपमें प्रणाम आदि किया है। ये पीछेसे घर-बार छोड़कर वृन्दावन चले आये और अन्ततक यहीं रह कर कृष्ण-भजन किये।

ये बड़े रसिक भक्त एवं प्रकाण्ड विद्वान थे। इनको कृष्ण-लीलाकी तुङ्गविद्या सखी माना जात है। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी, जिनमें प्रसिद्ध ग्रन्थ ये हैं—(१) वृन्दावन महिमामृत, (२) श्रीराधा-रस-सुधा-निधि, (३) श्रीचैतन्यचंद्रामृत, (४) संगीत-माधव और (५) आश्चर्य रास-प्रबन्ध। कुछ लोग श्रीराधारससुधानिधिके आरम्भ और अंत के श्रीचैतन्यमहाप्रभुके दो प्रणाम श्लोकों निकाल कर तथा उसका नाम "श्रीराधासुधानिधि" रख कर इसका रचयिता श्रीहरिवंश स्वामीको बतलाते हैं। परन्तु ग्रन्थकी भाव-भाषा तथा जयपुरके श्री-गोविन्द-ग्रन्थागार आदिकी प्राचीन प्रतियोंको देखने से इस ग्रन्थके रचयिता श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती ही निश्चित होते हैं।

कुछ लोग श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय पार्षद दक्षिण देश वासी वैष्णवाचार्य श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती एवं काशीवासी मायावादी संन्यासी श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीको एक ही व्यक्ति मानते हैं। परन्तु श्रीचैतन्यचरितामृत, भक्तिरत्नाकर आदि ग्रन्थोंके अनुशीलनसे यह मत सर्वथा कपोल कल्पित प्रतीत होता है। उक्त ग्रन्थोंमें इनकी जीवनीका विस्तृत वर्णन है।

गत १६ जुलाई, वृहस्पतिवारको समितिके शाखा मठोंमें इनका विरहोत्सव मनाया गया है।

श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीः—

श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके प्रसिद्ध छः गोस्वामियोंमें से एक हैं। ये व्रजलीलाकी अनङ्ग मंजरी (मतान्तरमें गुण मंजरी) थे। श्रीरङ्गमके निकट कावेरीके तट पर स्थित बेलाण्डि नामक ग्राम में १४ २५ शकाब्द (सन् १५०३ ई०) में एक सम्पन्न ब्राह्मण कुलमें आविर्भूत हुए थे। इनके पिताका नाम श्री वैंकट भट्ट था। भट्टजी तीन भाई थे—तिरुमलई, वैंकट भट्ट और गोपाल गुरु या श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती। ये लोग सपरिवार श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके सम्पर्कमें आकर—उनके सिद्धान्तों एवं भक्ति भावोंसे प्रभावित होकर कृष्णभक्ति-रसमें सराबोर हो गये

थे। श्रीगोपाल भट्ट उस समय बालक थे और उन्होंने बड़े प्रेमसे श्रीमन्महाप्रभुजीके चरणकमलोंकी सेवाकी थी। उन्होंने उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण भी कर दिया।

उनके विद्या एवं दीक्षा गुरु इनके पितृव्य—श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती थे। श्रीमन्महाप्रभु जब चार माहके बाद इनके घरसे पुनः दक्षिण-भ्रमण प्रारम्भ कर श्रीजगन्नाथपुरी लौट आये तब उसके कुछ वर्षोंके बाद ही कृष्णप्रेममें मत्त होकर वृन्दावनमें चले आये तथा श्रीरूप-सनातन आदि श्रीचैतन्यदेवके प्रिय-पार्षदोंके साथ रह कर भजन करने लगे। ये परम रसिक भक्त होनेके साथ ही बड़े विद्वान भी थे। श्रीमन्महाप्रभुजीने इनके लिये पुरीसे वृन्दावनमें अपनी डोर-कौपीन एवं एक आसन (काठका) भेजा था। वह आसन आज भी उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीराधा-रमणके मंदिरमें पूजित होता है। श्रीराधारमणजी पहले श्रीशालग्रामके रूपमें थे; श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीके भक्तिभावसे श्रीराधा-रमण विग्रहके रूपमें बदल गये। १५४२ ई० की वैशाखी पूर्णिमाको श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा श्रीराधारमणजीका अभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ था।

इनके अनेकों शिष्योंमें श्रीनिवासाचार्य एवं श्री-गोपीनाथ पुजारी आदि प्रधान हैं। प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार श्रीहरिवंश (श्रीहितहरिवंशजी) भी श्रीगो-पाल भट्ट गोस्वामीके ही शिष्य थे। परन्तु इनके आचार-विचारमें कुछ गड़बड़ी होने कारण श्रीगोपाल भट्टने इनका परित्याग कर दिया था। पीछेसे इन्होंने अपना पृथक सम्प्रदाय चलाया जिसे राधावल्लभी सम्प्रदाय कहते हैं।

रचित-ग्रन्थ—(१) हरिभक्तिविलास (श्रीगोपाल-भट्ट द्वारा संपादित तथा श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा संकलित तथा दिग्दर्शनी टीका सहित विरचित), (२) षट् सन्दर्भ-कारिका, (३) सत्क्रिया सार दीपिका (४) संस्कार-दीपिका। कुछ लोग "कृष्णकर्णामृत" की "कृष्ण-वल्लभ" टीकाके रचयिता भी इन्हींको मानते हैं; परन्तु इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता।

ये १५०० शकाब्द या १५१२ ई० में ७५ वर्षकी आयुमें अप्रकटलीलामें प्रविष्ट हुए थे।

गत ७ श्रावण २३ जुलाईको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त शाखा मठोंमें इनकी तिरोभाव तिथि का पालन किया गया है।

— —

वृन्दावनकी पृष्ठभूमि

[चतुर्थांक पृ० ९१ का शेषांश]

महामहिम श्रीवृन्दावन

"पादोऽस्य विश्वभूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि" (यजुर्वेदीय पुरुष सूक्त ३१।३) के अनुसार श्रीभगवान्‌की दो विभूतियाँ हैं—(१) एक पाद विभूति और (२) त्रिपादविभूति। एकपाद विभूति के अन्तर्गत दृश्यमान सम्पूर्ण विश्व और त्रिपाद विभूतिके अन्तर्गत दिव्यधाम हैं। अतः श्रीवृन्दावन-धाम भी दिव्य त्रिपाद विभूतिके ही अन्तर्गत माना जाता है। शास्त्रोंमें इस दिव्यधामके अवतारके भी प्रसङ्ग मिलते हैं। "मथुरा तीन लोक तैं न्यारी" यह उक्ति बहुत प्रचलित है। यहाँ मथुराका आशय सम्पूर्ण मथुरा मण्डलसे (जिसके अन्तर्गत श्रीवृन्दावन भी है) है अर्थात् समस्त व्रजभूमि इस उक्तिसे दिव्य धाममें परिगणित होती है। व्रजभाषाके प्रसिद्ध कवि श्रीभट्टजीने भी इसी आशयसे "व्रजभूमि मोहनी मैं जानी" कहा है।

प्रायः यह देखा जाता है कि किसी राजा, महाराजा विशिष्ट सम्मान्य महानुभावोंके आगमनकी सूचना होने पर उनके अनुरूप ही स्थानादि विभूषित किये जाते हैं। साधुओंके त्राण एवं दुष्टोंके दमन द्वारा धर्म-संरक्षणार्थ प्रत्येक युगमें श्रीप्रभुका अवतार होता है, यह एक विश्वव्यापी सत्य है। यह अवतार श्रीवृन्दावनादि धामोंमें ही होता है और ये धाम अवतारके पूर्व ही भूतलपर अवतरित होते हैं। अवतार-कालमें इन धामोंकी शोभा अत्यधिकरूपसे उद्भूत हो जाती है। यमुना, गोवर्द्धन, वृन्दावन तथा यहाँके पशु-पक्षी वृक्षादि एवं चौरासी कोस व्रजभूमिको देवताओंकी प्रार्थना पर श्रीभगवान्‌ने अपने अवतारके पूर्व ही इस भूतल पर अवतरित किया—

> वृन्दावनं भ्राजमानं दिव्यद्रुमलताकुलम्।
> चित्र पक्षि मधुव्रातैर्वंशीवट विराजितम्॥
> वेदनाग क्रोशभूमिः स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम्।
> गोवर्द्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि॥
>
> (गर्ग संहिता)

श्रीनारदजीकी शंका समाधान करते हुए श्रीभगवान्‌ने "इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम्" (द्रष्टव्य—श्रीगोविन्द वृन्दावने बृहद्गौतम तन्त्रे) कहकर इसे श्री सम्पन्न भी कर दिया।

पुराणोंमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि श्री कृष्ण और बलरामने समस्त व्रज-शोभा श्री वृन्दावनमें एकत्रित करके वहां अनेकानेक बाल लीलाएँ कीः—

> स समाया सितोः सर्वो व्रजो वृन्दावने ततः।
> एक स्थान स्थितौ गोष्ठे चरेतुर्बाल लीलया॥
>
> (विष्णुपुराण ५।६।४१)

उन्होंने सब ऋतुओंमें सुखदायक इस वृन्दावनमें प्रविष्ट होकर जब गोवर्धन, वृन्दावन और यमुना-

पुलिनको देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न हुए। (विस्तार हेतु देखिये—श्रीमद्भागवत १० ११।३३-३४) इस प्रसंगसे श्रीवृन्दावनकी सर्वोपयोगिता, सुरम्यता और प्राचीनता भी स्पष्ट हो जाती है।

ब्रह्मवैवर्त पुराणके कृष्णजन्म खण्डमें कुल १३३ अध्याय हैं। इस सम्पूर्ण खण्डमें वृन्दावनका व्यापकरूपसे वर्णन है। प्रथम ३० अध्यायोंमें तो श्रीकृष्णकी बाल लीलाओंसे किशोर लीलाओं तक के उल्लेखके साथ-साथ श्रीवृन्दावनका "वृन्दावन" नाम पड़नेका कारण, उसका निर्माण, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा आध्यात्मिक महत्त्वके सम्बन्धमें सांगोपांग वर्णन है। १७ वाँ पूरा अध्याय श्रीवृन्दावनमें एक अद्भुत नगर निर्माणकी गाथापरक है, यह विचित्र नगर-निर्माण श्रीश्यामसुन्दरकी इच्छासे एक ही रात्रिमें सम्पन्न हुआ था। प्रातःकाल निद्रा-खुलने पर जब गोप-गोपियोंने उस अद्भुत नगरको देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

श्रीभगवान्‌का यह नित्य-धाम वृन्दावन अलौकिक अर्थात् अप्राकृत है, निज स्वरूप-भूत आधार-शक्तिके रूप शेषदेवके शिरस्थ है, ब्रह्मरूप है। अतएव यह सच्चिदानन्दघन है। प्राकृत किसी भी पदार्थका लेशमात्र भी सम्पर्क यहाँ नहीं है। इसीलिये श्रीवृन्दावन धाम नित्य धाम है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आधे क्षणके लिये भी वृन्दावनका त्याग नहीं सकते हैं:—

दिव्यं वृन्दावनं स्थानं शेषागस्थं च सर्वदा।
ब्रह्म रूपमिदं स्थानं सच्चिदानन्द रूपकम्॥॥
(अथर्व वेदीय पु० बो० उ० ११ प्रापाठक)

महालक्ष्मी जी स्वयं श्रीकृष्णके इस परमधाम वृन्दावनका परिचय देती हुई कहती हैं कि—गोकुल नामक व्रजमण्डलमें वृन्दावन धाम है जो कि प्रभुको अत्यन्त प्रिय है, उसमें भी सहस्रदल कमल पर कल्पवृक्षके मूलमें अष्टदल यंत्र है जहाँ पर श्रीदीन-दयालु गोविन्द विराजते हैं:—

"गोकुलाख्ये मथुरा मण्डले वृन्दावन मध्ये सहस्रदल पद्मे·····विराजते इति।" (वही अष्टम प्रपाठक)।

श्रीपद्मपुराण समस्त वैष्णव सम्प्रदायोंके मूल सिद्धान्तोंकी आधार पीठिका है। प्रत्येक सम्प्रदायमें किसी न किसीरूपमें अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन इसी पुराणके आधार पर किया है। इस पुराणके "पाताल खण्ड" के अनेक अध्यायोंमें श्रीवृन्दावनके सरोवर वनादिकी स्थितिका विवरण देखनेको मिलता है। विशेषकर ६९ वां अध्याय तो श्रीवृन्दावनके ही महत्त्वसे परिपूर्ण है। श्रीवृन्दावनका आधिभौतिक स्वरूप सर्वथा सुन्दर एवं पवित्र है। श्रीश्यामसुन्दर की चरण-रजके स्पर्शसे इस महत् वनकी पवित्रता और भी अलौकिक हो गई है। यह अक्षर है, परमानन्द है तथा भगवान् गोविन्दका अव्ययस्थल है:—

अक्षरं परमानन्दं गोविन्दस्थानमव्ययम्।
(प० पु० पा० खं. ६९।७१)

यह वृन्दावन स्वयं गोविन्दरूप है और है पूर्ण ब्रह्मानन्दका आश्रय। इसके रज मात्रको स्पर्श कर लेनेसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है:—

गोविन्द देहतोऽभिन्नं पूर्णं ब्रह्म सुखाश्रयम्।
मुक्तिस्तत्र रजः स्पर्शात् तन्माहात्म्यं किमुच्यते॥
(वही ६९।७२)

श्रीवृन्दावन ८४ कोष व्रज मण्डलका मध्यवर्ती भाग है। इसीलिए पौराणिक सिद्धान्तोंके आधार पर इसे सहस्र दल कमलकी कर्णिका भी कहा गया है। "पाताल खण्ड" के ७४ वें अध्यायमें व्रजभूमिके अनेकों ऐसे स्थलोंकी महिमाका प्रचुर वर्णन देखनेको मिलता है कि जहाँ लीलामय भगवान् श्रीकृष्णने अपनी मधुर लीलाओंको प्रकट किया। पञ्च योजन (२० कोस) परिमित यह वृन्दावन भगवान् श्रीकृष्ण की देहरूप है तथा परम अमृत-वाहिनी कलिन्दजा यमुना ही उनकी सुषुम्ना नाड़ी रूपा है; फिर भला श्रीभगवान् क्षणभर हेतु भी इस वनका त्याग कैसे कर सकते हैं ?—

पंच योजन मेवास्तिवनं मे देहरूपकम्।
कालिन्दीयं सुषुम्ना या परमामृत वाहिनी॥
अत्र देवाश्च भूतानि वर्तन्ते सूक्ष्मरूपतः।
सर्वं देवमयश्चाहं न त्यजामि वनं क्वचित्॥
(प. पु पा. खं. ७५।१०।११)

यह वृन्दावन परमानन्द कन्द स्वरूप, प्रबल पाप-पुञ्जोंको नष्ट करने वाला, समस्त क्लेशोंका समनकारक एवं जीव मात्रको मुक्ति प्रदान करने वाला है:—

परमानन्द कन्दाख्यं महापातक नाशनम्।
समस्त दुःख संहन्तृ जीवमात्र विमुक्तिदम्॥
(प. पु. नि. खं.)

अत्यन्त पावन श्रीवृन्दादेवी द्वारा समाश्रित यह वृन्दावन ब्रह्म रुद्रादिसे सेवित तथा श्रीहरिके द्वारा अधिष्ठित है। यह रम्य वन मुनियोंके आश्रमोंसे पूर्ण तथा वन्य मृगादिसे समन्वित है, जिस प्रकार श्री लक्ष्मीजी और भक्ति परायण मनुष्य ये दोनों श्रीगोविन्दजीको अत्यन्त प्रिय हैं; ठीक उसी प्रकार इस वसुन्धरामें श्रीवृन्दावन उन्हें प्रिय है, यह वृन्दावन अत्यन्त मनोहर है, श्रीगोवर्द्धन पर्वत द्वारा सुशोभित है, यहाँ भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित असंख्य तीर्थ हैं:—

अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनो गिरिः।
यत्र तीर्थान्यनेकानि विष्णुदेव कृतानि च॥
(स्कन्द पुराण मथुरा खन्ड)

स्कन्द पुराणमें श्रीनारदजी कहते हैं कि श्रीवृन्दावनमें परम पवित्र श्रीगोविन्द देवजी हैं जो कि उनके सेवकोंसे प्रतिक्षण परिव्याप्त रहते हैं। मैं तो सदैव वहीं निवास करता हूँ। पृथ्वीमें गोविन्दका वैकुण्ठ है जिसमें वृन्दावन सुशोभित है। जो मनुष्य श्रीवृन्दावनमें गोविन्द मन्दिरका दर्शन करते हैं, वे पृथ्वीमें धन्य हैं—

तस्मिन् वृन्दावने पुण्यं गोविन्दस्य निकेतनम्।
तत्सेवक समाकीर्णं तत्रैव स्थीयते मया॥
भुवि गोविन्दं वैकुण्ठं तस्मिन् वृन्दावने नृप।
यत्र वृन्दादयो भृत्याः सन्ति गोविन्द लालसा॥
वृन्दावने महासद्ममर्हद्दृष्टं पुरुषोत्तमैः।
गोविन्दस्य महीपाल ते कृतार्थामहीतले॥
(वही)

इसीसे मिलता हुआ प्रसंग "आदि वाराह" में इस प्रकार है कि जो मनुष्य वृन्दावनमें श्रीगोविन्दजी का दर्शन करते हैं, वे यमपुरको न जाकर महापुण्यात्माओं की गतिको प्राप्त होते हैं:—

वृन्दावने तु गोविन्दं ये पश्यन्ति वसुन्धरे ।
न ते यमपुरं यान्ति यान्ति पुण्यकृतां गतिम् ॥
(गोविन्दस्य आदिवाराहे)

श्रीकृष्ण लीलाके लिए मेरुदण्ड सदृश श्रीमद्-भागवत समस्त वैष्णव सिद्धान्तोंका आधार ग्रन्थ है। इस महाग्रन्थमें उल्लेख मिलता है कि अपनी योग मायासे ग्वाल वेषमें राम और श्याम व्रजमें क्रीड़ा करते थे। जीवधारियोंके हेतु अतिशय दुखद प्रचन्ड ग्रीष्म ऋतुका प्रभाव इस वृन्दावनमें नहीं था वरन् ग्रीष्मकालमें ही वहाँ वृन्दावनके स्वाभाविक गुणोंके कारण वसन्तकी दिव्य एवं सुखद छटा ही छिटकी रहती थी, झींगुरोंकी तीखी झङ्कार, झरनों की सुमधुर झरझर ध्वनिमें विलीन हो गई थी, उन निर्झर झरनोंसे सदैव शीतल जल बिन्दु उड़ा करते थे। फलतः श्री वृन्दावन-भूमि हरे-भरे वृक्षोंसे सुशोभित रहती थी, नदी, सरोवर एवं झरनोंकी उर्मि-राशि का मधुर स्पर्श करके अपनी मन्थर गतिसे चलता हुआ पवन लाल, पीले और नीले रङ्गोंके विकसित कह्लार, उत्पलादि विभिन्न कमलोंके मकरन्दको वृन्दावनके वक्षस्थल पर छिटकता रहता था। इस वृन्दावनमें न दावाग्निका ही ताप था और न यहाँ सूर्यकी प्रचण्ड किरणें ही प्रवेश कर पाती थीं, सुख सम्पन्न इस वृन्दावनमें नाना प्रकारके पवित्र एवं गुण सम्पन्न पशु-पक्षी अपनी-अपनी मधुर भाषामें इसकी कल-कीर्त्तिका गान करते थे। ऐसे सुन्दर वनको देखकर कमलनयन भगवान् श्यामसुन्दर और गौरसुन्दर श्रीबलरामजीने इस वृन्दावनमें विहार करनेकी इच्छा प्रकट की। इस प्रकार श्रीवृन्दावनकी महिमासे आनन्द विभोर होकर आगे आगे झूँमता हुआ गौ-समूह उनके मध्यमें त्रिलोक विमोहनी वेणु-रव उद्घोषित करते हुए स्वयं श्रीभगवान् कृष्ण और उनके पीछे-पीछे ग्वाल-बालोंका समूह श्रीवृन्दावनके लिए गोकुल से चल पड़ाः—

श्री शुक उवाच—

अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ।
वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥
(श्रीभागवत १०।१८।१-८)

(क्रमशः)

भक्तकी निष्ठा

न वयं कवयो च तार्किका, न च वेदान्त-नितान्त-पारगाः ।
न च वादिनिवारकाः परं कपटाभीरकिशोरकिङ्कराः ॥
—श्रीसार्वभौमभट्टाचार्य

हम न कवि हैं, न तार्किक, न वेदान्त शास्त्रके ही नितान्त पारंगत हैं, और न प्रतिवादियोंके मतका ही हम निराकरण करनेवाले हैं। हम तो केवल व्रजराजकुमार श्रीनन्दनन्दनके नित्य किङ्कर हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा

चौथा परिच्छेद

श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं

प्राचीन कालसे ही शक्ति और शक्तिमानके विषय में आलोचना होती आ रही है। कुछ लोगोंका ऐसा कथन है कि संसारमें जितने प्रकारके अनुभव हैं—वे सब शक्तिके अनुभव हैं। शक्तिके अतिरिक्त शक्तिमान नामकी कोई सत्ता है या नहीं—यह सन्देहकी बात है। शक्ति ही वस्तुको प्रकाश करती है अथवा उसका परिचय प्रदान करती है। अतएव वस्तुकी तनिक भी अनुभूति नहीं होती, केवल वस्तुशक्तिकी भी अनुभूति होती है। वे इस कथन की पुष्टिमें जो उदाहरण देते हैं, वह यहाँ दिया जा रहा है—"पृथ्वीपर आकृति और विस्तृति आदि कुछ धर्म हैं। हमलोग जिसे पृथ्वी कहते हैं, वह केवल इन गुणोंकी समष्टि मात्र है। यदि ये गुण पृथक हो जाँय तो पृथ्वी नामकी कोई वस्तु रहेगी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। गुण और धर्म—सभी शक्ति हैं। अतएव शक्ति ही एकमात्र तत्व है।" कुछ लोग ऐसा भी तर्क उपस्थित करते हैं कि—"शक्ति कुछ नहीं है, वह तो वस्तुका अपृथक एक धर्ममात्र है। वस्तु जिसे प्रकाश करता है, उसे ही शक्ति कहते हैं।" इस प्रकारके वितर्कोंमें सारग्राही महापुरुषोंने यह स्थिर किया है कि—शक्ति एक तत्त्व है तथा शक्तिमान एक दूसरे तत्त्व हैं। ये दोनों तत्त्व पृथक होकर भी अपृथक हैं। मनुष्यकी चिन्ता सर्वदा सीमित होती है; अतएव वह शक्ति और शक्तिमानके परस्पर अत्यन्त गूढ़ सम्बन्धकी उपलब्धि नहीं कर पाती। वास्तवमें पृथक होने पर भी वस्तु और वस्तु शक्ति अपृथक हैं। दोनोंमें पार्थक्य और अपार्थक्य युगपत् सिद्ध है। इसलिये वस्तु और वस्तु शक्तिका परस्पर अचिन्त्य-भेदाभेदात्मक स्वभाव है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें ऐसा कहा गया है—

राधा—पूर्णशक्ति, कृष्ण—पूर्णशक्तिमान्।
दुई वस्तु भेद नाहि शास्त्र-परमाण॥
मृगमद, तार गन्ध जैछे अविच्छेद।
अग्नि, ज्वालाते जैसे कभु नाहि भेद॥
राधाकृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुई रूप॥
(आ० ४।९६-९८)

वेद और वेदान्तमें भी यही सिद्धान्त देखा जाता है। शास्त्रोंमें यह डंकेकी चोटसे कहा गया है—"शक्ति-शक्तिमतोरभेदः।"

वस्तु-तत्त्वके विचारसे कृष्णके अतिरिक्त और कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इसलिये शास्त्रमें श्रीकृष्ण को अद्वयतत्त्व कहा गया है। परन्तु ब्रह्मवादी एवं परमात्मवादी श्रीकृष्णको परम तत्त्व निर्देश करनेका साहस नहीं कर पाते। यद्यपि वस्तु एक है, फिर भी उसे देखने वाले विभिन्न अधिकारियोंके भेदसे वह

एक ही वस्तु विभिन्न रूपोंमें प्रकाशित होती है। उदाहरणस्वरूप एक पर्वतको तीन तरफसे तीन व्यक्ति देखते हैं; पर्वतके उत्तर भागमें कुहासा पड़ रहा है; जो व्यक्ति उस तरफसे देख रहा है, वह कुहासासे ढके हुए बड़े-बड़े शिला-खण्डोंको ही पर्वत कहेगा। पर्वतके दक्षिण भागमें प्रचण्डरूपसे सूर्य किरणें पड़ रही हैं, उस तरफसे देखनेवाला व्यक्ति पर्वतको ज्योतिर्मय शैल-प्राचीरके रूपमें देखेगा। पर्वतके जिस दिशामें किसी प्रकारकी उपाधि नहीं है, उस दिशासे देखनेवाला व्यक्ति पर्वतके सर्वांगको पूर्णरूपसे देखकर पर्वतका यथार्थ स्वरूप निर्णय करेगा। इसी प्रकार पण्डितगण अपने-अपने दृष्टि-कोणके भेदसे अद्वय-वस्तुका अलग-अलग रूपमें दर्शन करते हैं और उसीके अनुरूप उसका अलग-अलग रूपमें निर्देश भी करते हैं। जो लोग केवल ज्ञानका अनुशील करते हैं, वे जड़ीय-सत्ताके विपरीत भावको ही एक निर्विशेष, निराकार, निःशक्तिक एवं निष्क्रिय ब्रह्म मान लेते हैं। परन्तु इससे वस्तुका स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। जो लोग बुद्धियोग द्वारा वस्तुका अन्वेषण करते हैं, वे अपनी आत्माके अविरोधी स्वरूप विशेष, आत्माके साथी परमात्मा का दर्शन करते हैं। और जो लोग उपाधिरहित निर्मल भक्तियोगसे वस्तुका दर्शन करते हैं, वे उस अद्वयवस्तुका साक्षात्कार लाभ कर सर्वैश्वर्यपूर्ण, सर्वमाधुर्यपूर्ण, सर्वशक्तिमान एक पृथकभूत परमतत्त्व रूप भगवान्‌का दर्शन करते हैं। कठोपनिषदमें कहते हैं—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना - श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्॥
(१।२।२३)

अर्थात् उन परमात्माको वेदादि शास्त्रोंके अध्ययन द्वारा नहीं पाया जा सकता है, धारणाशक्ति या अनेक शास्त्रोंके श्रवण द्वारा भी उनको नहीं लाभ किया जा सकता है। जो लोग उनको ही अपना एकमात्र प्रभु मान लेते हैं, केवल उन्हीं के निकट ही वे अपना अप्राकृत स्वरूप प्रकाश करते हैं। ऐसे व्यक्ति ही उनको प्राप्त करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें भी ठीक ऐसा ही कहा गया है—

तथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोपि चिरं विचिन्वन्॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।२८)

हे देव! जो लोग आपके चरण युगलोंकी कृपा-का लेशमात्र भी प्राप्त होते हैं, केवल वे ही आपकी महिमा जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त जो दीर्घ समय तक अनुमानके द्वारा शास्त्र-विचारपूर्वक आपको खोज रहे हैं, उनमेंसे कोई भी आपके तत्त्वको जान नहीं पाते।

ब्रह्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन सोपाधिक हैं अर्थात् मायिक उपाधिके विपरीत भावसे ब्रह्मदर्शन होता है तथा मायिक उपाधिके अन्वयभावसे परमात्म दर्शन होता है। परन्तु निरुपाधिक चिन्मय-नेत्रोंसे वस्तुका दर्शन करनेसे ही चिन्मय-भगवत-स्वरूपका दर्शन होता है। भगवत-स्वरूप ही वस्तु है तथा

भगवत्-शक्ति ही शक्ति तत्त्व है । शक्ति रहित भगवानको दर्शन करनेसे निर्विशेष ब्रह्मका दर्शन होता है । अपनी-अपनी प्रवृत्तिके अनुसार कोई-कोई ब्रह्म-दर्शनको ही चरम दर्शन मानते हैं । वास्तवमें निःशक्तिक निर्विशेष भगवद्भाव ही ब्रह्म है तथा शक्तिमान् सविशेष ब्रह्म ही भगवान् हैं । अतएव भगवान् ही स्वरूप तत्त्व हैं और ब्रह्म केवल उनके स्वरूपके निर्विशेष आविर्भाव ज्योति मात्र हैं । परमात्मा भी भगवानके अंशमात्र हैं जो जगतमें प्रविष्ट हैं । भगवान् ब्रह्मके रूपमें प्रतिफलित होकर भी अपने सविशेष अचिन्त्य-स्वरूपमें जगत् और जीवसे पृथक् रूपमें नित्य विराजमान हैं । इसलिये भागवतमें कहते हैं—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥
(भा० १।२।२१)

[परतत्त्व-दर्शी महात्मागण परतत्त्वको एक अद्वय-ज्ञान वस्तु कहते हैं । उसी तत्त्व वस्तुकी प्रथम प्रतीति ब्रह्म हैं, द्वितीय प्रतीति परमात्मा हैं, और तृतीय प्रतीति भगवान हैं ।]

अद्वयज्ञान तत्त्व वस्तुकी शुष्क और निःशक्तिक-प्रतीति ही "ब्रह्म" हैं । जड़के भीतर सूक्ष्म रूपमें प्रविष्ट आत्ममय प्रतीत ही 'परमात्मा' हैं । अद्वय-ज्ञानकी पूर्ण सविशेष प्रतीत ही 'भगवान' हैं । यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि भगवत प्रतीति भी दो प्रकार की है—ऐश्वर्य प्रधान प्रतीति और माधुर्य प्रधान-प्रतीति । ऐश्वर्य प्रधान-भगवत् प्रतीति का नाम—श्रीपति नारायण है तथा माधुर्य-प्रधान भगवत् प्रतीतिका नाम—श्रीराधानाथ श्रीकृष्ण है । अतएव कविराज गोस्वामीका यह पद्य—"राधापूर्ण शक्ति, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान" पूर्ण रूपसे सार्थक है ।

ब्रह्म और परमात्माको अङ्गीभूत कर तथा नारायणके भी समस्त ऐश्वर्यको अपने माधुर्य द्वारा आच्छादन किये हुए चित् शक्ति सम्पन्न श्रीकृष्ण ही एकमात्र अद्वय वस्तु हैं । श्वेताश्वतर उपनिषद्में भी ऐसा वर्णन किया गया है--

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते ।
न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ॥
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ।
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥
(श्वे० ६।८)

उन कृष्णका प्राकृत इन्द्रियोंकी सहायतासे कोई कार्य नहीं है; क्योंकि उनको न तो प्राकृत इन्द्रियाँ हैं न तो प्राकृत शरीर ही । उनका श्रीविग्रह (शरीर) सम्पूर्ण रूपसे चित्-स्वरूप है । इसलिए जड़ शरीर जिस प्रकार सीमित सौन्दर्य के साथ भी एक ही समयमें सर्वत्र नहीं रह सकता है, श्रीकृष्ण-शरीर वैसा नहीं है । वह नित्य नवीन अतुलनीय सौन्दर्य मण्डित एवं एक ही समय सर्वत्र रहनेवाला भी होता है । इसके अतिरिक्त वह सर्वत्र रहकर भी अपने चिन्मय-वृन्दावनमें नित्य लीला-विशिष्ट होता है । ऐसा होकर भी वे परात्पर वस्तु हैं । दूसरा कोई भी स्वरूप उनके समान या उनसे बढ़कर नहीं हो सकता है; क्योंकि वे अविचिन्त्य शक्तिके आधार हैं । अविचिन्त्यका तात्पर्य—जीवबुद्धिके द्वारा सामंजस्य न होना है । इसी अविचिन्त्य शक्तिका नाम—परा शक्ति है । यह स्वाभाविकी शक्ति एक होकर भी तीन रूपोंमें प्रकाशित है— (१) ज्ञान (सम्बित्),

(२) बल (सन्धिनी), और क्रिया (ह्लादिनी) चैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

कृष्णेर स्वरूप, आर शक्तित्रयज्ञान।
जार हय, तार नाहि कृष्णेते अज्ञान॥
चिच्छक्ति-स्वरूप-शक्ति अन्तरङ्गा नाम।
ताहार वैभवानन्त वैकुण्ठादि धाम॥
मायाशक्ति बहिरंगा जगत्कारण॥
ताहार वैभवानन्त ब्रह्माण्डेर गण॥
जीवशक्ति तटस्थाख्य नाहि जार अन्त।
मुख्य तीन शक्ति तार विभेद अनन्त॥
एइ त स्वरूपगण आर तीन शक्ति।
सबार आश्रय कृष्ण, कृष्णे सबार स्थिति॥
(आ० २।९६, १०१-१०४)

अन्यत्र श्रीचैतन्य महाप्रभुके वाणीमें भी देखिए।

कृष्णेर स्वाभाविक तीन शक्ति-परिणति।
चिच्छक्ति, जीवशक्ति आर माया शक्ति॥
(म० २०।१११)

इस कारिकामें भी यह स्पष्ट है—

शक्तिः स्वाभाविकी कृष्णे त्रिधा चेत्युपपद्यते।
सन्धिनी तु बलं सम्बिज्ज्ञानं ह्लादकरी क्रिया॥
शक्ति-शक्तिमतो भेदो नास्तीति सारसंग्रहः।
तथापि भेदवैचित्र्यमचिन्त्यशक्तिकार्यतः॥
सन्धिन्या सर्वमेवैतत् नामरूपगुणादिकम्।
चिन्मायाभेदतोभेदो विश्ववैकुण्ठयोः किल॥
सम्बिदा द्विविधं ज्ञानं चिन्मायाभेदतः क्रमात्।
चिन्मायाभेदतः सिद्धं ह्लादिन्या द्विविधं सुखम्॥
ह्लादिनी श्रीस्वरूपा या सैव कृष्ण-प्रियङ्करी।
महाभाव-स्वरूपा सा ह्लादिनी वार्षभानवी॥

[शास्त्रोंमें कृष्णकी तीन प्रकारकी स्वाविक शक्तियोंका उल्लेख है। वे तीन शक्तियाँ हैं—'बल' (सन्धिनी), ज्ञान (सम्बित्) और क्रिया (ह्लादिनी) शक्ति। शक्ति और शक्तिमान अभिन्न हैं—समस्त शास्त्रोंका यही एक मत है। तथापि अचिन्त्य शक्ति की क्रियासे उनमें भेद वैचित्र्य परिलक्षित होता है। नाम-रूप-गुण आदि व्यापार सन्धिनी शक्तिके कार्य हैं। चित्के अन्तर्गत सन्धिनी और मायाके अन्तर्गत सन्धिनीमें अन्तर है। पहलीसे वैकुण्ठकी सत्ता प्रकाशित हुई है तथा दूसरीसे मायिक संसारकी सत्ता प्रकट हुई है। उसी प्रकार चिद्गत सम्बित् और मायागत सम्बित्के भेदसे ज्ञानभी दो प्रकारका होता है। उसी प्रकार चिद्गत ह्लादिनी और मायागत ह्लादिनीके भेदसे ह्लादिनी शक्ति द्वारा उत्पन्न सुख भी दो प्रकारके होते हैं। पहलीसे चित् सुख होता है, दूसरीसे मायिक सुख प्राप्त होता है। ह्लादिनी शक्ति कृष्णकी प्रियतमा दासी श्रीस्वरूपिणी हैं। वे महाभाव स्वरूपा वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिका जी हैं।]

———

प्रचार-प्रसंग

अन्नकूट महोत्सव

गत १२ कार्त्तिक २६ अक्टूबर, सोमवारको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखा मठोंमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरीधारीकी महा समारोहके साथ पूजन एवं उनका अन्नकूट महा महोत्सव सम्पन्न हुआ है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें उक्त दिवस विराट संकीर्तनपूर्वक मनाया गया है। अन्तमें उपस्थित वैष्णवों एवं अतिथि-अभ्यागतों, गृहस्थ भक्तों—सबको महाप्रसाद वितरण किया गया। विभिन्न प्रकारके भोगकी वस्तुओंकी संख्या लगभग १५० थी। श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चूचूड़ा एवं श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें भी यह उत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ है।

श्रीश्रीगौर किशोरदास बाबाजीका तिरोभाव महोत्सव

गत २२ कार्त्तिक ८ नवम्बर, बृहस्पतिवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीश्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी तिरोभाव-तिथि समारोहके साथ मनायी गयी है। उस दिन केशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें त्रिदण्डि स्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने श्रीश्रीबाबाजी महाराजके अभूतपूर्व त्याग एवं वैराग्यमय जीवन, उनकी भजन प्रणाली तथा उनकी अतिमर्त्य शिक्षाओं पर मर्म स्पर्शी प्रकाश डाला।

चातुर्मास्य एवं दामोदर व्रतकी समाप्ति

गत २६ कार्त्तिक, १३ नवम्बर, सोमवार पूर्णिमाको समितिके सभी मठोंमें चातुर्मास्य व्रत एवं नियमसेवा (कार्त्तिक व्रत या दामोदर-व्रत) की समाप्ति पर उत्सव मनाया गया तथा विधि-पूर्वक व्रतकी समाप्ति की गयी। उक्त दिन सवेरे कीर्तन और भागवत पाठके अनन्तर दिन विधिपूर्वक मुण्डन आदि कार्य को समाप्त कर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरीधारीके पूजनके पश्चात् उनको नाना प्रकारके सुस्वादु भोग-दिया गया तथा सबको महाप्रसाद वितरण किया गया।